



## निवेदन

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है। अपने को सुखी और दुखी बनाना उसके हाथ में है। अंगरेज बरि जेम्सपियर ने ठीक ही कहा है कि "संसार में न तो कोई वस्तु अच्छी है और न कोई बुरी है; किसी वस्तु को अच्छी या बुरी मनुष्य के विचार बनाते हैं।"

वर्तमान पुस्तक 'मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है' जेम्स एलेन की प्रसिद्ध पुस्तक 'Man - King of Mind, Body and Circumstances' का म्बच्छन्द हिन्दी भावान्तर है। इसमें विद्वान लेखक ने बताया है कि किस प्रकार मनुष्य अपने मन और विचारों को अपने अधीन करके अपना जीवन सुखी बना सकता है। उसके मन में मनुष्य के चारों ओर सुख ही सुख है, दुःख का नाम भी नहीं है।

आशा है जेम्स एलेन की 'मन की अधार शक्ति, 'नर में नाशकण', 'दैनिक स्थान' आदि ह्दार्थितकारी पुस्तकमाला प्रयाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की तरह इस पुस्तक का भी बारी प्रचार होगा और उसके अनुसार चलकर हमारे देशवर्ती विशेषकर हमारे देश के हीनहार एवं सुख विचारों अपने जीवन को ऊँचा और सुखी बना सकेंगे।

दीपावली १९५६

केदारनाथ गुप्त, एम० ए०



## मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

### १—विचारों की भीतरी दुनिया

मनुष्य ही अपने को सुखी और दुखी बनाता है। अपने  
। और दुःख को वापस रखने वाला भी यही है। सुख और  
व मनुष्य को बाहर से नहीं मिलते। वे अपने मन के ही  
। घर भरे हुए हैं। कोई देवता अथवा दानव भी हमें सुखी  
। फिर दुखी नहीं बना सकता। परिस्थितियों का भी कोई अमर  
। मारे सुख और दुःख पर नहीं पड़ता। बाल्य में सुख और दुःख  
। हमारे विचारों से ही उत्पन्न होते हैं। पहले किसी काम को  
। करने का विचार हमारे मन में पैदा होना है और फिर हम उस  
। काम को करना शुरू करते हैं। करने के बाद तब हमको उसका  
। अन्धा या धुँग पत्तल मिलता है। यदि हमारे विचार अच्छे हों  
। और उनके अनुसार हमने कष्टों के साथ काम किया तो हमको  
। सुख मिलता है और यदि हमारे विचार गन्दे हों और हमने  
। साधनवादी के साथ काम किया तो हमें दुःख मिलता है। नतीजा  
। देखा यद् निकला कि यदि हम दुखी नहीं रहना चाहते तो

मनुष्य ही मनु, मर्ग्य और परमार्थियों का राह है

मे अपने विचारों को एक ही पक्षना होगा। दुन ही  
दुन जाने के लिए हम अपने उन विचारों को हन  
ह नये को पक्षना होगा विनये हम दुन निराली  
तय प्राप्त देखेंगे। ह पक्षने के साथ ही आरत बंद  
मुनो ज्ञ प्राप्त। जब मनुष्य अपने गार्थ को मानने  
और उनी दृष्टिकण में मानना और काम करना है  
दुमी होना है और जब वह उदात्ता को मानने गता है  
उनी दृष्टिकण में काम करना है जब वह मुनी है  
मनुष्य जो काम करता है उसके होने वाले फल को वह  
बदल सकता किन्तु काम करने की प्रणाली को अपने  
विचारों में वह बदल सकता है ताकि उसे मुन मिले।  
अपनी बुरी आदत को सुधार सकता है और अपने चरित्र  
ऊँचा उठा सकता है। आत्म-नियम में बड़ी शक्ति होती है  
जब हम अपने जीवन को आत्म-नियम द्वारा बदल देने  
हमें अपार आनन्द मिलता है।

प्रत्येक मनुष्य के विचार भीमित होते हैं किन्तु वह

विचारों की सीमा को बढ़ा सकता है और अपने विचारों के

ऊँचा उठा सकता है। वह नीचे से ऊपर को उठ सकता

और भद्रे विचारों को छोड़ सकता है और अच्छे

को अपना सकता है; ऐसा करने से उसका

जा और उसके चरित्र में अधिक सुन्दरता पैदा होगी। साथ उसे इस बात का ज्ञान भी होगा कि जिस सीमा के अन्दर काम कर रहा था उससे दुनिया कहीं बड़ी है और ज्ञान प्राप्त ले का क्षेत्र भी बहुत बड़ा है।

मनुष्य अपने अच्छे और बुरे विचारों के अनु रूप अच्छी वर सुरी अवस्था में अपना जीवन व्यतीत करने है। यदि उनके न में बुरे विचार भरे हुये है तो उनको दुनिया दुखद और शीर्ष होती है और यदि उनके मन में अच्छे विचार भरे हुये तो उनकी दुनिया सुखद और विस्तीर्ण होती है। मनुष्य की गल-बगल को दुनिया में उनके विचार का ही प्रभाव पड़ा ता है।

एक ऐसे मनुष्य को लोकिने जो शकरी और लोभी है और नरों से ईर्ष्या करता है। उसकी दुनिया बड़ी छोटी होती है, उसके शार्पा भी नीच स्वभाव के होते है और उसे किसी चीज का आनन्द नहीं मिलता। अपने में बुरापन न होने के कारण उसे ही भी बुरापन नहीं दिखलाई पड़ता, अन्य निराम्ना होने के कारण उसे किसी प्राणी में अच्छाई नहीं दिखलाई पड़ती। और कहीं तक कहे उसका देवता भी लोभी होता है जिसे पूज कर वह अपना काम करवाने का दम भरता है। जैसा नीच और स्वार्थी वह स्वयं होता है वैसा ही नीच और स्वार्थी वह

५ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

दुगरों को भी समझता है। ऊँचे से ऊँचे निस्वार्थ कामों में भी उसे चुगई ही दिगल्लाई पड़ती है।

अब एक ऐसे मनुष्य को लीजिये जो शम्भी नदी है, बड़ा बड़ा उदार है और जिसके विचार बड़े ऊँचे हैं। उसकी दुनिया किननी विचित्र और सुन्दर होनी है। उसे मनु प्राणियों में एक भिन्न प्रकार की अच्युत दिगल्लाई पड़ती है। वह सब मनुष्यों को ईमानदार समझता है और सब मनुष्य उसे ईमानदार समझते हैं। उसके सामने आते ही नीच से नीच मनुष्य में भी उसी की तरह उदारता के भाव पैदा हो जाते हैं। पहले तो उसकी सूरत देखकर वह घबड़ा जाता है किन्तु धीरे-धीरे वह होंस में आता है और अपने में बड़े ही आनन्द और सुख का अनुभव करता है।

इन दो प्रकृति के मनुष्य यद्यपि पास-पास रहते हैं किन्तु उनकी दुनिया भिन्न-भिन्न होती है और उनके काम करने के सिद्धान्त भी भिन्न-भिन्न होते हैं। उनके काम करने का ढंग भी अलग-अलग होता है और उनकी नैतिकता भी एक दूसरे से नहीं मिलती। वे एक ही बरतु को अलग-अलग निगाहों से देखते हैं। उनके विचार एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं और दो अलग-अलग दायरों की तरह उनका आपस में मेल नहीं खाता। एक तो नरक में रहता है और दूसरा स्वर्ग में रहता

और जिन प्रकार वे जीवन काल में अलग-अलग रहते हैं वही प्रकार मरने पर भी वे अलग-अलग लोकों में जाते हैं। एक को दुनिया में चोर ही चोर दिखलाई पड़ते हैं और दूसरे तो इस दुनिया में देवता ही देवता दिखलाई पड़ते हैं, एक सरो को लूटना है और टगना है इसलिये दूसरे उगे लूट न लें और टग न लें इस तरह वे यह अपने पास उनमें बचने के लिये हमेशा एक बन्दूक रक्ता है। दूसरा लोगों में प्रेम रक्ता है इसलिये उन लोगों की दायत के लिये उसका टगवाजा हमेशा खुला रहता है। उसके यहाँ बुद्धिमान और ईमानदार लोगों का जमपट रहता है। उसके सब दोस्त अत्यन्त चरित्रवान होने हैं। वे सब उसी में गुल-मिल जाने हैं। उसके साथ रहने के कारण वे भी सब उसी विचार के हो जाते हैं। उसके हृदय में प्रेम उमड़ना रहता है इसलिये उसके साथी उसमें टग गुना प्रेम करने हैं और हमेशा उसका आदर करने हैं।

मनुष्य समाज में इतनी भिन्नता क्यों होती है ? क्योंकि मनुष्यों के विचार और उनके रहन-सहन भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं जिनका प्रभाव मनुष्य समाज पर पड़ता है। नीच प्रकृति वाले समाज की भिन्नता की निन्दा भले ही करें किन्तु उनकी निन्दा से समाज की भिन्नता दूर नहीं हो सकती। जिनके स्वभाव एक दूसरे से भिन्न हैं और जिनके जीवन के सिद्धान्त भी एक



६ मनुष्य ही मन, शरीर और परिमितियों का राजा है

दुग्ध में भिन्न है उनके विचारों को एक ही भगवान् एक स्वरूप में खाने का कोई भी उपाय नहीं है । मनुष्य के भिन्नोद्देश्य मानने वाले श्रीमन्मनु के नियमों की अखण्डता करने वाले एक दुग्ध में स्वभावतः भिन्न होते हैं । भृगु अपना अस्मित के कारण वे एक दुग्ध में भिन्न नहीं होते । याज्ञिकों के कारण वे एक दुग्ध में भिन्न नहीं होते । शूद्रों के कारण वे एक दुग्ध में भिन्न नहीं होते । दुष्ट प्रवृत्ति वाले मनुष्यों के साथ वे ही नहीं होते क्योंकि उनके बीच में मनुष्य विचारों को एक मनुष्य ही नहीं रखता है जिसे दुष्ट प्रवृत्ति वाले धीरे-धीरे दृष्टि सज्जते हैं किन्तु अपनी नीच प्रवृत्ति के बल पर उनके पार नहीं जा सकते । स्वर्ग की वादशाहत दिग्गम में नहीं मिलनी । स्वर्ग की वादशाहत उसे मिला करनी है जो उनके सिद्धान्त के अनुसार अपना चरित्र बनाता है । दुष्ट दुष्ट की संगति में रहता है और मनुष्य मनुष्यों की संगति में रहता है जिनका सम्पर्क ईश्वर से रहता है जिनकी आवाज वे हमेशा अदृश्य रूप से सुना करते हैं । सब मनुष्य शीशे की तरह हैं जो अपने धरातल के अनुसार अपना प्रतिबिम्ब बाहर फेंकते रहते हैं । सब शीशे जब हम संसार के मनुष्यों और चीजों की तरफ देखते हैं तो वे शीशे की तरह अपना ही प्रतिबिम्ब बाहर फेंकते हैं और हमें प्रभावित करते हैं ।

हर एक मनुष्य अपने सीमित अथवा विस्तृत विचारों की सीमा

अनुसार काम करता है और उस गौमा के शहर निम्नो चम्पु उसका सम्पर्क नहीं करता। यह पेचल दुर्गी को जानता है श्रमके द्वारा उसने अपने को धनाता है। उसकी गौमा जिनकी ने संकीर्ण रहेंगी उनना ही उसको हम शान का विरुधाम होगा के उसके शहर अत्र फेंटे दृमरी चीज नहीं है। छोटे शिमाग में बड़ी-बड़ी बार्ने नहीं आ सकती। उसमें बड़े लोगों की बड़ी शान को समझने का सामर्थ्य ही नहीं होता। उसकी समझ में बड़े लोगों की बार्ने उस समय आवेंगी जब यह बड़े लोगों का समल में धीरे धीरे बैठने लगेगा। जो मनुष्य बड़ी समल में बैठता है वह उस छोटी समल को जानता है जिसमें वह बैठता था। छोटी समल का प्रभाव बड़ी समल में प्रवेश कर जाता है और उसीसे वह मुग्नित रहता है। अब मनुष्य और भी ऊँची समल में बैठने लगता है जहाँ उसे बड़े-बड़े बुद्धिमान और चरित्रवान पुरुषों की समल मिलती है तो उसे मालूम होता है कि जिस समाज में मैं उठता बैठता था उसमें भी ऊँची समाज है जिसका उसे अभी तक कोई ज्ञान नहीं था।

जिस प्रकार एक विद्यार्थी का नाम उसकी योग्यता के अनुसार किसी कक्षा में लिखा जाता है उसी प्रकार मनुष्य को उसकी योग्यता के अनुसार वैसी समल मिलती है। ६वीं कक्षा के पाठ्यक्रम को

८ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है प्रथम कक्षा का विद्यार्थी नहीं समझ सकता। वह पाठ्यक्रम उसकी समझ के बाहर होता है। किन्तु धीरे-धीरे जब उस योग्यता आ जाती है तो वह उसे समझने लगता है। कक्षाओं को पार करके जब वह ६वाँ कक्षा में पहुँचता है उसके पाठ्यक्रम को वह अच्छी तरह समझ लेता है किन्तु आगे भी योग्यता की एक श्रेणी आती है जिसे अध्यापक ही समझ है, वह विद्यार्थी नहीं समझता। यही दशा मनुष्य के जीवन होती है। जो नीच प्रकृति के हैं, जो स्वार्थी हैं, जिन्हें हम अपने मतलब की बात सूझा करती है, वे उन लोगों को समझ पाते जिनके चरित्र ऊँचे हैं, जो परोपकारी हैं और जिनमें मन शान्त, गम्भीर और पवित्र होते हैं किन्तु वे अच्छे काम के ऊँचे विचार रखकर और अपनी नैतिकता की वृद्धि करके उच्च स्तर तक पहुँच सकते हैं। इन सब जमाअतों के ऊपर अवतारी उपदेशक होते हैं जो मनुष्यों का कल्याण करने के लिए जन्म लेते हैं और जिनकी पूजा विभिन्न मतवाले करते हैं। विद्यार्थियों की तरह इन अवतारी उपदेशकों की भी श्रेणियाँ हैं। उनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो महात्मा ईसा के पद तक पहुँचे होते हैं किन्तु वे अपने चरित्र-मूल से जनता की रहनु जमाअत में मेज के पास खड़े होकर भ उपदेशक नहीं बन सकता, सच्चा उपदे

वह है जिसकी पूजा लोग तुम्हारी नीतिक्रिया और महात्मा के  
 शान्त करते हैं।

मनुष्य ऊँच और नीच अपने अपने अन्दर और अपने दिव्यों के  
 बनता है। हमका और फोड़ें दुःख कागल नहीं हुआ करता।  
 प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों के दावों में ही उठता उठता है और  
 वही उम्मीद दुनिया होती है। उम्मीद दुनिया में उम्मीद आदमी  
 बनता है और उम्मीद में उम्मीद आनन्द मिलता है। वह उम्मीद दुनिया  
 के लोगों में रहता है जिनके श्रमदार उम्मीद श्रमदार में मिलते-  
 जुलते हैं। किन्तु यह जल्दी नहीं है कि वह उम्मीद वही श्रमदार में  
 पड़ा रहे। वह अपने विचारों को ऊँचा बनाकर ऊपर उठ सकता  
 है। वह बहुत ऊँचे उठकर अपने को सुखी बना सकता है। जब  
 वह ऊँचा उठने का विचार हृदयपूर्वक कर लेता है तो वह  
 संकीर्णता और स्वार्थ की जर्जरा को नाइकर एक ऊँचे क्षेत्र में  
 प्रवेश करता है और अपने जीवन को सुखी बना लेता है।

## २—बाहरी चीजों का सच्चा स्वरूप

जिग प्रसार विचारों का अपना संगार होता है उसी प्रकार बाहरी चीजों के सच्चे स्वरूप का भी अपना संगार होता है। विचारों को समझ कर ही हम बाहरी गगार को समझ सकते हैं, जो चीज वही है उसके भीतर छोटी चीज स्वभावतः मना इच्छा है। संसार मन का प्रतिबिम्ब है। जो बाहर घटनाई शुरू करती है उनके आधार विचार होते हैं। परिस्थितियों के विचारों से बनती है। सारे वायु-मण्डल का जिनमें मनुष्य रहता है और दूसरे मनुष्यों के उन कार्यों का जिनमें वह सहयोग देता है सम्बन्ध आवश्यकतानुसार उनके विचारों और उनकी वृद्धि से होता है। मनुष्य जिन संगत में उदता-वैदता है उसका एक श्रेय होता है। वह अपने साधियों से अलग नहीं रह सकता। वह उनकी मित्रता और कार्यों से प्रभावित होता रहता है। इसके अलावा उस पर उन जल्दरी विचारों का भी प्रभाव पड़ता रहता है जिनके द्वारा समाज का काम होता है।

वह बाहरी संसार को अपनी चक्षिक सनक और इच्छाओं अनुकूल नहीं बना सकता। हाँ, वह अपनी सनक और

च्छाओं को छोड़ सकता है। वह अपने मन के सुन्दर के  
 स प्रकार बदल सकता है कि घागी चीजें उसे एक मित्र  
 कार की दिग्गजाई पड़ने लगें। वह दूसरों के कामों को अपने  
 अनुकूल नहीं बना सकता किन्तु वह अपने कामों को हम प्रमा  
 ना सकता है कि दूसरे के कामों से उसके कामों का मिला  
 होता रहे। जिस परिस्थिति में वह रहता है उसे वह नष्ट ना  
 कर सकता किन्तु वह अपने विचारों को बहुत पर और उद  
 बनकर अपने को उस परिस्थिति के अनुकूल बना सकता है।  
 परिस्थितियों विचारों के पीछे-पीछे चलती है। अपने दिमा  
 को बदलो; तो साहसी समार सब तुम्हारे अनुकूल होना जायगा।  
 शीशे में अपना मुँह अच्छी तरह दिखलाते पड़ दूसरे मि  
 शीशे को बिल्कुल साफ होना चाहिये। एक दिखने हुए मन  
 शीशे में अपना मुँह देखने में वह बड़ा बड़ा दिखलाते पड़  
 है। जिसका मन स्थिर नहीं है उसे समार का एक बहुत  
 बड़ा रूप दिखलाते पड़ता है; मन को धरा में करो और  
 स्थान रखो तो तुम्हें समार का एक बहुत ही सुन्दर  
 आनन्दपूर्ण रूप दिखलाते पड़ेगा।

मनुष्य के भीतर अथार शक्ति भरी है जिसके द्वारा  
 अपने मन को पवित्र और शक्तिशाली बना सकता है।



र भी बगे तो उसका नतीजा सब पर प्रगट ही हो जाता है ।  
 यदि तुममें लोग प्रसन्नता देखते हैं तो समझ जाते हैं कि  
 ने अच्छा काम किया है और यदि तुममें उदासीलता देखते  
 तो समझते हैं कि तुमने दुग काम किया है । 'जोखन का  
 लक' नाम एक कहानी में यह बात अच्छी तरह स्पष्ट  
 है कि प्रत्येक विचार और प्रत्येक काम का अपना सम्बन्ध  
 तथा है जिस पर अच्छी तरह विचार किया जाता है । इसी  
 तल्ले यह कहा जाता है कि तुम्हारे कामों का नतीजा दूसरी चीजों  
 नहीं भोगना पड़ता बल्कि मार गमात्र अथवा मरण का भोगना  
 पड़ता है । तुम अपने घरे कामों के नतीजों का होने में क्या  
 नहीं सकते किन्तु जिन विचारों से तुम घरे काम करने पर तैयार  
 होते हो उन विचारों को बदल कर तुम घरे कामों के  
 नतीजों को रोक सकते हो । इसीलिये ऐसा पता जाता  
 है कि मनुष्य का सर्वोत्तम उत्तम कर्तव्य यह है कि यह अपने  
 विचारों को ऊँचा बनाकर अच्छे-अच्छे काम करे ।

यह बात सच है कि तुम होनेवाली बाहरों घटनाओं को नहीं  
 बदल सकते किन्तु अपने को ऐसा बना सकते हो कि उनमें  
 तुम्हें कोई हानि न पहुँचे । कष्ट और मुक्ति का कारण  
 तुम्हारे भीतर ही मौजूद है । यदि तुम्हें दूसरे नुकसान पहुँचाते  
 हैं तो इसका दोष तुम्हारा ही है । तुम अपने विचार ऐसे बनाते



१४ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का रखरखाव हो और ऐसे काम करने हो कि दूसरे तुमको नुकसान पहुँचाने के लिये मजबूर हो जाते हैं। तुम्हारे दूषित काम ही तुम्हें नुकसान पहुँचाने हैं। भाग्य का निर्माण अपने ही अच्छे से होता है। जीवन में मधुर और कड़ुआ फल मनुष्य अच्छे अथवा बुरे कामों के बदौलत ही पाता है। ईसाई आदमी को न तो कोई नुकसान पहुँचा सकता है और न उसका कुछ बिगाड़ सकता है। वह हमेशा निरिच्छत रहता है हमेशा शान्त रहता है। वह सबका भला चाहता है इसलिए वह कोई उसको हानि नहीं पहुँचाता। यदि कोई उसे नुकसान पहुँचाने का प्रयत्न करता है तो उल्टे उसी का नुकसान हो है। वह दूसरों के साथ नैकी करता है इसलिये उसे सुख मिलता है और उसके भीतर उत्तरोत्तर शक्ति की होती रहती है। उसके काम की जड़ उसकी नैकनीयता है और उसका फल सुख होता है।

यदि दूसरे किसी मनुष्य की चुगली करते हैं अथवा उसे नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते हैं तो इसमें उन लोगों का दोष नहीं होता किन्तु उसमें उस मनुष्य का ही दोष होता है क्योंकि दूसरों के प्रति उसके विचार अच्छे मनुष्य आगति और दुरत स्वयं पैदा करता है। यह अपने अज्ञान विचारों और कामों का

ग पड़ रहा है। वह समझता है कि मेरे दूरे काम के कारण  
 न परिश्रम होगा जे लिये झूठ हो रहा है किन्तु वास्तव में  
 ली धान नहीं होती। दूरे काम के कारण मनुष्य को नुकसान  
 फिर पहुँचता है। अपने नुकसान को सोचकर वह पन्द्रहा जाता

घाँस दुर्ग होकर अपनी हानि की पूर्ति करने के लिये घोर  
 विध्वंस करता है। उसमें उसके हानि की पूर्ति नहीं हुई  
 झगलाई पड़ती है किन्तु वास्तव में उगरी पूर्ति नहीं होती,  
 उगरी अज्ञानि का कारण वास्तव में वह काम नहीं होता जिसे  
 वह करता है चल्कि वे विचार होने हैं जिनमें प्रेरित हाकर वह  
 काम करता है। नक मनुष्य का उगी काम में कोई परेशानी  
 नहीं होती। उसे वह यो ही व्यर्थ समझकर टाल जाता है। वह  
 जानता है कि वह काम उसे लोग कर रहे हैं जिनमें उसका  
 कोई सम्बन्ध नहीं है, वह यह भी जानता है कि ऐसा काम उस  
 वायु-मण्डल में सम्बन्ध रखता है जिसमें उसका कोई हाथ नहीं  
 है। वह उस काम से अपने कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ता। वह  
 समझता है कि हममें मेरा कोई नुकसान नहीं हो सकता। ऐसे  
 'निकृष्ट कामों का जहाँ में पापण मिलता है वहाँ में वह अपने  
 'को कदा ऊँचा रखता है। ऐसे काम उसे किसी प्रकार का  
 नुकसान उभी प्रकार नहीं पहुँचा सकते जिस प्रकार यदि बच्चे  
 'सूर्य के ऊपर धूल फैकें तो उस धूल का सूर्य पर कोई प्रभाव

















## ३—आदत की गुलामी और उससे मुक्ति

मनुष्य की जैसी आदत पड़ जाती है वैसा ही वह काम कर सकता है। तो क्या फिर वह स्वतन्त्र है? जी हाँ, वह स्वतन्त्र है। मनुष्य ने स्वयं शरीर में जीवन नहीं डाला और न उसके कानून बनाये। ये दोनों तो बाबा आदम के जमाने में चले आ रहे हैं। वह इन कानूनों में फँसा रहता है किन्तु उनकी समझ कर उनके अनुसार चल सकता है। जीवन के कानून बनाना मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर है। हाँ वह अपने विवेक द्वारा अपनी भलाई के लिये बने हुए कानूनों में से चुनाव कर सकता है। ईश्वर कृत कानूनों में से किसी कानून के लेशमात्र को भी मनुष्य बना नहीं सकता। वे कानून तो अकारण होते हैं जो न तो मनुष्य के द्वारा बनाये जा सकते हैं और न नष्ट किये जा सकते हैं। वह उन कानूनों को ग्राह्य निवाला है किन्तु उन्हें बना नहीं सकता। उनकी जानकारी न होने में मनुष्य को दुख मिलता है। उनके पालन न करने से वह अन्धन में पड़ता है और भ्रम कहेलाता है। जो चोर देश के कानूनों को तोड़ता है और जो भला आदमी उनका पालन करता है, इन दोनों में से कौन अधिक स्वतन्त्र होता है ?

१०. मनुष्य की मृत्यु कब तक होनी चाहिए - मनुष्य की मृत्यु कब तक होनी चाहिए

मनुष्य की मृत्यु कब तक होनी चाहिए - मनुष्य की मृत्यु कब तक होनी चाहिए

मनुष्य की मृत्यु कब तक होनी चाहिए - मनुष्य की मृत्यु कब तक होनी चाहिए

(हार्नो के) आदर्शों के अनुसार मनुष्य की मृत्यु कब तक होनी चाहिए

शक्ति और उसके कानूनों की जानकारी प्राप्त करके उनके अनुकूल चलते हैं और उनका उचित प्रयोग करते हैं उसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष ईश्वरकृत नियमों और कानूनों की जानकारी कर लेता है और उनका प्रयोग बुद्धिमानी में करता है। मूर्ख मनुष्य आदत का पक्का गुलाम बन जाता है और बुद्धिमान मनुष्य उसको समझ वृक्ष कर अपने हित में उसका प्रयोग करता है। मैं फिर भी दोहराता हूँ कि मनुष्य आदत को बना नहीं सकता, वह तो ईश्वर की ओर से बनकर आती है। वह मनमानी उस पर हुकूमत भी नहीं कर सकता। हाँ, उस आदत का विवेक द्वारा ज्ञान प्राप्त करके उसको समझ कर अपने हित में उसका प्रयोग वह कर सकता है। यह वास्तव में खराब मनुष्य है जिसकी विचारधारा अथवा जिसके काम खराब होते हैं और वह वास्तव में नेक मनुष्य है जिसकी विचारधारा और जिसके काम अच्छे होने हैं। खराब मनुष्य भी अपनी आदतों को बदल कर नेक मनुष्य बन सकता है। वह आदत को नहीं बदलता, वह अपने को बदलता है। वह अच्छी आदत के अनुकूल अपने को बना लेता है। वह नरक में डालने वाली भोग-विलास की आदतों को छोड़ सकता है और उनके स्थान में स्वर्ग में पहुँचाने वाली आदतों को डाल सकता है। यह उच्च स्तर पर ले जानी वाली आदतों को पकड़ कर निम्न स्तर पर ले जानी

२२ मनुष्य ही मन, जगत् और परिस्थितियों का गुरु है

सारी आशों में सुखका वा गुरु है । आदा गुरु है वह  
अच्छा मद मो नों की नों बनी रहति है । यह उन्हे मानने  
सकना बिना यह खाने बिना काग गुरु आशों को हाने  
अच्छा आशों को खाना मरजा है ।

विश्व का वा वा-वार दोहराने में आशु बनती है । मनु  
जब वा वा वा एक ही विचार, एक ही काम और एक ही अनु  
को दोहराना है तो ये उगके आनन्द में गुन मिल जाते हैं और  
उगके जीवन के एक अंग बन जाते हैं । मनुष्य को भीनी रुत  
रिपर हाना है और मन में जो विचार पैदा होने हैं उनकी कति  
उचित होगी रहती है । आज जो एक मनुष्य जैसा देग पक  
है वैसा वह लाखों विचारों और लाखों कामों की पुनरुत्पत्ति से  
बना है । वह जैसा है वैसा बनाकर नहीं गझ कर दिया गया है ।  
वह धीरे-धीरे जैसा है वैसा बना है और आगे भी वैसा बन रहा  
है । उसने अपना वर्तमान चरित्र पहले से सोच समझकर धीरे-  
धीरे बनाया है । उसने पहले अपने मन का एक काम सोचा ।  
उसे जब वह बार-बार करने लगा तो वह उसकी आदत बन  
गई ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपने बराबर  
होने वाले विचारों और कामों के समूह से बना है । जिन विशिष्ट  
को वह अपने आप बिना किसी प्रयास के प्रकट करता है

वे बार बार दोहराने से उसे मिले हैं और इसीलिये वह उनको आप से आप दोहराता रहता है। वे एक प्रकार से उसका स्वभाव बन गये हैं। उमे उन विशिष्ट गुणों को प्रकट करने के लिये फिर सोचने अथवा प्रयत्न करके प्राप्त करने की जरूरत नहीं पड़ती। समय पाकर वे हतने हट् हो जाते हैं कि यदि वह उनको छोड़ना भी चाहे तो उन्हें वह छोड़ नहीं सकता। मर प्रकार की श्रादतें चाहे वे अच्छी हों अथवा बुरी हों इन्हीं तरह से घननी हैं। जब श्रादतें बुरी बन जाती हैं तो लोग कहने लगते हैं कि वह बुरी श्रादतों का शिकार हो गया है, उसका दिमाग खराब हो गया है और जब श्रादतें अच्छी बन जाती हैं तो लोग कहने लगते हैं कि बाह बाह ! देखा तो उस मनुष्य का स्वभाव कितना अच्छा है, उसकी श्रादतें कितनी अच्छी हैं।

सभी मनुष्य अपनी श्रादतों के आधीन रहने हैं और भाविष्य में भी बराबर रहेंगे चाहे वे श्रादतें अच्छी हों अथवा बुरी हों। यानी वे उन विचारों और कामों में बराबर प्रभावित हान रहेंगे जिनकी पुनर्पत्ति वे अभी तक बराबर करने रह रहे हैं। यह समझकर बुद्धिमान् मनुष्य अच्छी-अच्छी श्रादतों को अपनाते हैं जिनमें उनको आनन्द, सुख और स्वतन्त्रता मिलती है। यदि वे खराब खराब श्रादतों को अपनावें तो उनमें उनको दुःख मिलता है और दैन्यता और गुलामी का सामना करना पड़ता है।

२४ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

आदत बनने का यह नियम एक और तो उस मनुष्य के बन्धन में डाले रहता है जिसकी आदतें बुरी बन गई हैं और दूसरी और उस मनुष्य को लाभ पहुँचाता है और बन्धन से मुक्त रखता है जिसने अच्छी आदतें डाल लीं। वह अच्युत के कान बिना किसी प्रयास के आप से आप करता रहता है जिससे उसके जीवन भर बराबर सुख मिलता है। आदतों के द्वारा मनुष्य के जो काम आप से आप होते रहते हैं उनके बारे में लोगों ने यह दोष निकाला है कि मनुष्य एक तरह से पंगु हो जाता है। उसी न तो अपनी इच्छा कुछ काम करती है और न उसमें अपनी तथीयत से काम करने की कोई स्वतन्त्रता ही रहती है। वे कहते हैं कि मनुष्य जन्म से ही अच्छा या बुरा होता है और प्रकृति के हाथ का एक मूक खिलौना रहता है।

यह बात सच है कि मनुष्य अपने विचारों के हाथों का एक खिलौना बना रहता है, उसमें उन्हीं विचारों की शक्ति काम करती रहती है किन्तु वे विचार जड़ियत नहीं होते। यदि वह चाहे तो उन्हें नवीन नवीन दिशाओं की ओर ले जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि यदि वह पक्का इरादा कर ले तो वह अपनी आदतों को एकदम बदल सकता है। यह बात ठीक है कि वह एक विरोध चरित्र लेकर पैदा हुआ है जिसके अनेक जन्मों में परिधम करके अपने आप बनाया है





## २४ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

आदात बनने का यह नियम एक शोर तो उस मनुष्य के पन्थन में डाले रहता है जिगरी आदतें बुरी बन गई हैं जो दूगरी और उस मनुष्य को लाभ पहुँचाता है और बन्धन से मुक्त रगता है जिगने अच्छी आदतें डाल ली। वह अच्छाई के इन पिना शिगी प्रयाग के आप से आप करता रहता है विश्वे उनके जीवन भर बराबर मुख मिलता है। आदतों के द्वारा मनुष्य जो काम आप से आप होने रहते हैं उनके बारे में लोगों ने दोष निकाला है कि मनुष्य एक तरह से पगु हो जाता है। उर्ध्व न तो अपनी इच्छा कुछ काम करती है और न उसमें अपनी तबीयत से काम करने की कोई स्वतन्त्रता ही रहती है। वे कहते हैं कि मनुष्य जन्म से ही अच्छा या बुरा होता है और प्रकृति के हाथ का एक मूक खिलौना रहता है।

यह बात सच है कि मनुष्य अपने विचारों के हाथों का एक खिलौना बना रहता है, उसमें उन्हीं विचारों की शक्ति काम करती रहती है किन्तु वे विचार जड़वत नहीं होने। यदि वह चाहे तो उन्हें नवीन नवीन दिशाओं की ओर ले जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि यदि वह पक्का इरादा कर ले तो वह अपनी आदतों को एकदम बदल सकता है। यह बात ठीक है कि यह एक विशेष चरित्र लेकर पैदा हुआ है जिसको उसने अनेक जन्मों में परिधम करके अपने



२६ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

जिस कानून से उसने अपने को बन्धन में डाला है उसी कानून से वह अपने को उस बन्धन से मुक्त भी कर सकता है। इच्छा की सच्चाई को जानने के लिये उसे करके देखना होगा उसे विचार पूर्वक परिश्रम के साथ पुरानी विचारधारा का काम करने का पुराना रवैया बदलना पड़ेगा और नई विचारधारा और काम करने का नवीन रवैया अपनाना पड़ेगा। इस परिवर्तन को यदि वह एक दिन, एक सप्ताह, एक महीना, एक वर्ष या पाँच वर्ष में भी न ला सके तो न तो घबड़ाना चाहिये और न निराश होना चाहिये। पुरानी आदतों को तोड़कर उनके स्थान में नवीन आदतों के लाने उसे काफी समय लगेगा किन्तु परिवर्तन होगा अवश्य, किंचितमात्र भी शक नहीं है। उसे अपने प्रयत्न में वेचिपट कर लगे रहना चाहिये, कभी छोड़ना न चाहिये। उसे उस सफलता अवश्य मिलेगी। यदि एक ऐसी आदत, जिसे आप नहीं चाहते और जिसका प्रभाव बुरा पड़ता है, जड़ पकड़ सकती है तो एक अच्छी आदत भी, जिसका प्रभाव अच्छा पड़ता है, आसानी से जड़ पकड़ सकती है। जब तक मनुष्य अपने को निर्बल समझता रहता है तब तक वह नुकसान पहुँचाने वाली और दुख देनेवाली अपनी भीतरी कमियों को दूर कर सकता। यदि मनुष्य की कोई बुरी आदत पड़ गई



२८ मनुष्य ही मन, शरीर और परिधिपतियों का राजा है

है और इनके विपरीत विचारों से वह अपने को मुक्त करता है। बदला हुआ मन मनुष्य के चरित्र को, आदतों को और जीवन को बदल देता है। मनुष्य स्वयं अपना मुक्तिदाता है। जिस प्रकार वह अपनी गुलामी लाया है इसी प्रकार वह अपनी मुक्ति भी ला सकता है। युगों से वह अपनी मुक्ति के लिये बाहरी मुक्तिदाता का मुँह देखता रहा है। इसी से वह अभी तक बन्धन में पड़ा हुआ है। बड़ा मुक्तिदाता तो अपने भीतर बैठा हुआ है। वह सचाई का देवता है। सचाई का देवता भलाई व भी देवता हुआ करता है। वह ही मनुष्य वास्तव में भलाई व देवता है जो अच्छे-अच्छे विचार मन में लाता है जिनसे नैक काम होते हैं।

मनुष्य को किसी दूसरी शक्ति ने नहीं बाँध रक्ता है। वह अपने दूषित विचारों से ही बंधा हुआ है जिनसे वह अपने मुक्त कर सकता है। उसका सबसे बड़ा शत्रु यह विचार है: 'मैं उन्नति नहीं कर सकता,' 'मैं अपनी आदत को नहीं बदल सकता,' 'मैं अपने को समय में नहीं रख सकता,' और 'मैं आगुनाहों को नहीं छोड़ सकता।' इन 'नकारात्मक' विचारों कोई मूर्तिमान अस्तित्व नहीं होता। वे केवल मन में तरंगों के

पैदा करने वाले 'नकारात्मक' विचार



## ४—शरीर के रोग

मगार में लागी मगदूर मग्धावे है जहाँ शरीर के रोग अन्धे किये जाते है । हमारे यह बात दृष्ट है कि आबत शारीरिक व्याधि मिनो वदी हुई है । हमी प्रकार मनुष्य के मन भी दूबित हो रहे है मिनडे टीक कर्ने के लिये लागी फनिक मग्धावे मगार में काम कर रही है । प्रयेक मग्धा अग्ने दग से शरीर का स्वस्थ बनाने की चेष्टा कर रही है मिनु तब में शरीर की योग्यी दूर नहीं हो रही है । उगी प्रकार सारे फन भी मन की पवित्र बनाने का प्रयत्न कर रहे है मिनु मन का दोष दूर होना दिगलाने नहीं पड़ता ।

रोग शरीर के नम-नम में इतनी गहराई तक पाव और दुस्त की तरह प्रवेश कर गये है कि ये व्याधियों से शान्त नहीं रहे हैं । किन्तु यह न भूलना चाहिये कि हमारे रोगों का वास्तविक कारण हमारा दूबित मन है । मैं यह नहीं कहने का दभरता कि भौतिक कारणों से रोग उत्पन्न ही नहीं होते । भौतिक कारण बहुत बातों में रोग उत्पन्न करते हैं । गन्दे वायुमंडल में कीटाणु अधिक उत्पन्न होते हैं । उनसे बहुतों की मृत्यु हो जाती है । गन्दगी वास्तव में हमारे नैतिक पतन की निशानी है

गन्दगी हमारे मन की दशा का संकेत है, यानी हमारा मन गन्दा या दुर्गन्धित एक स्थान में गन्दगी हुई। अतएव जिसे हम रोग कहते हैं वह गन्दगी से पैदा होता है। उसका बहुत कुछ सम्बन्ध मन से हुआ, मन से हमारा रोग का हमारा कर्म से है। आदिकल व शास्त्रन समाज न मनोर का मन बड़ा बड़ा इच्छा न अशान्त हो रहा है। जिसका कारण यह होता है कि वह अपने शरीर व कर्म का शरीर भला सा रहता है दुर्गन्धित उसका शरीर गन्दगी से ही जाता है। इसका मन भी अशान्त हो रहा है शरीर कलम है। उसका शरीर भी रोग आगत रहता है जानकर हमला होना है। उनका सामने सम्बन्ध का बाद प्रकृत हो रहा रहता। अतएव व मन से शान्त रहने है शरीर मन से शान्त रहने से उन्हें व ई रोग नष्ट होता। वे प्रकृत व साथ शरीर जीवन अन्तर्गत रहते हैं। उनका कोई नैतिक जिम्मेदारी नष्ट होता। उन्हें पार और पुन्य का कोई विचार ही नहीं रहता। वे दिल का शिला देनेवाले कष्ट, दुःख और निराशा से मुक्त रहने हैं जो मनुष्य का काफी परेशान करके उनके जीवन के मुख को नष्ट कर रहे हैं। मनुष्य इन परेशानियों से तभी बचता है जब वह अपने मन को सतार की भभटों से हटा कर ईश्वर की ओर सच्चे दिल से लगाता है। उस समय उसके सारे कष्ट दूर हो जाते हैं और उसे



३२ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

अजीब शान्ति का अनुभव होता है। इस प्रकार जब उसका मन शान्त हो जाता है तो उसका शरीर भी स्वस्थ हो जाता है और वह पूर्ण स्वस्थ होने का अनुभव करता है।

शरीर में मन का प्रतिबिम्ब पड़ता है। शरीर से ही हमें मन के भीतर छिपे हुये विचारों की जानकारी होती है। शरीर मन के आधीन रहता है। संभव है भविष्य के वैज्ञानिक इस बात का पूर्णरूप से निश्चय कर दें कि शरीर की प्रत्येक बीमारी मन के दूषित होने से ही पैदा होती है।

मन की शान्ति अथवा नैतिकता के बल पर ही वास्तव में मनुष्य स्वस्थ रहता है। मन की शान्ति कोई दवा की शीर्ष नहीं है कि एकदम उसे पी लिया और रोग दूर हो गया। मन की शान्ति तो शरीर को निरोग करने में धीरे-धीरे अपना काम करती है। यदि मनुष्य का मन धीरे-धीरे शान्त होता जाय, या धर्म की उसकी प्रवृत्ति बढ़ती जाय तो हमारे शान्त और धार्मिक मन का प्रभाव धीरे-धीरे शरीर के रोग को दूर करने अपना काम करता रहेगा। यदि पूर्ण स्वास्थ्य हमें न भी मिले तो हमारा रोग हमें अधिक परेशान न कर सकेगा क्योंकि उ रोग की तीव्रता को हमारे निर्दोष और दृढ़ मन ने निकर बाहर फेंक दिया है।

यदि मनुष्य ने अपने मन को ठीक करना अपना करने निकलने का पदार्थ अभी हाल में ही शुरू किया है और यदि वह बीमार पड़ जाता है तो यह जरूरी नहीं है कि उसकी बीमारी नुस्त ही अच्छी हो जाय ।

बुद्ध समय तक तो पहले का जमी हुई शरीर की गन्तगी मारी भाग में निकल सकनी है और रोग भी बंद सकता है केन्तु हमसे पदार्थ नहीं चाहिये । जिन प्रकार मनुष्य जब मन को निर्दोष बनाना शुरू करता है तो, कुछ अनाधारण मनुष्यों को छोड़कर शेष लोगों को एकदम शान्ति नहीं मिल सकती । उन्हें नाना प्रकार में कष्ट पहले महना पड़ता है और तब शान्ति मिलती है । उसी प्रकार, कुछ अनाधारण मनुष्यों को छोड़कर शेष लोगों को एकदम अच्छी तन्दुरुस्ती नहीं मिल सकती । निर्दोष मन और अच्छी तन्दुरुस्ती को पाने के लिये समय की जरूरत होती है । यदि नुस्त अच्छा स्वास्थ्य न मिले तो निकट भविष्य में तो अवश्य ही मिल जायगा ।

यदि मन पुष्ट हुआ तो तन्दुरुस्ती का प्रश्न ही गौण हो जाता है । उसको वह महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिलता जो गुरु-शुरू में बहुतरे लोग उसे दिया करते हैं । यदि बीमारी दूर न हुई तो पुष्ट मन वाला रोगी बराबर हँसता रहेगा और उस पर उस बीमारी का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ेगा । बीमारी के रहे



। स्वस्थ मन से ही वास्तव में स्वस्थ शरीर मनुष्य को बनता है ।

अस्वस्थ मन अस्वस्थ शरीर से कहीं अधिक शोचनीय होता है । इससे शरीर का रोग बढ़ता है । एक दुर्बल मन वाले मनुष्य में दशा एक स्वस्थ शरीर वाले से कहीं अधिक दुःखदायक हानी है । ऐसे रोगी भी हैं ( जिनको प्रत्येक डाक्टर जानता है ) जिनके मन को यदि पुष्ट, सुखी और उदार बना दिया जाय तो उनका रोग दूर हो सकता है ।

यदि तुम अपने को मनुष्य कहते हो तो मन, शरीर और भोजन सम्बन्धी सब कमजोर विचारों को दूर कर दो । यदि मनुष्य यह समझता है कि मैं पौष्टिक भोजन करता हूँ और तब भी मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता तो उसे अपने मन को पुष्ट करके अपने स्वास्थ्य को ठीक करना चाहिये । यदि मनुष्य समझता है कि उसका स्वास्थ्य एक विशेष प्रकार के भोजन से ठीक रहता है जो लगभग हरेक वृद्धत्व को नर्साच नहीं होता तो वह अपने पाल रोग को घुलाता है । यदि शाकाहारी कहता है कि आलू खाने से मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, पला के खाने से अपच होता है, सब खाने से अम्लता पैदा होती है, दाल मेरे लिये विषवत् है, तरकारियों के खाने से मुझे हानि पहुँचती है और इसी प्रकार दूसरी घलुएँ भी मेरे स्वास्थ्य को नष्ट कर

२८      मानस ही मूल, शरीर और पर्यावरणों का मूल है

दुखे भी मानस सम्बन्ध रह सकता है, उसे कमजोरी नहीं बोलना  
कर सकती और वह इस अवस्था में छोटे दूमाँ को मानस ही  
सकता है। लन्दुसानी के सिंगल सम्बन्ध बड़ा बड़ा है कि सिंगल  
लन्दुसानी अर्थात् नहीं होती, वह सम्बन्ध का कोई सम्बन्ध का  
नहीं वह सम्बन्ध और न वह जीवन में सुखी ही रह सकता है  
किन्तु यह हम देखते हैं कि लोगों ने सभी दिशाओं में बड़े-बड़े  
सम्बन्धपूर्ण काम किये और आज भी कर रहे हैं और उन  
स्वास्थ्य स्वस्थ हो रहे हैं या उनके कर्मान में हमें कोई तन्त्र न  
दिखावाई पड़ता। प्रायः ऐसा भी देखते हैं प्रायः है कि यह  
गोपी हो जाने में पीछे काम अधिक होता है, रोग में दुःख  
अधिक गदाग मिथता है और उनके मार्ग में कोई रुकावट न  
पड़ती। यह बात ठीक नहीं जिनके कि सुखी और साभन्द की  
के लिये अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकता है। हमारे तो हम  
मन को शरीर के आधान किये देते हैं। पुष्ट मन वाले, शरीर  
शरीर कण भी हुआ तो भी उगरी परपाह नहीं करते। वे उसे  
उपेक्षा करने हैं और परापर काम करते रहते हैं जैसे उन  
कोई रोग हुआ ही नहीं है। हम प्रकार शरीर की उभरे  
करने से केवल मन ही पुष्ट और निरोग नहीं रहता बल्कि  
इससे शरीर भी चंगा हो जाता है। यदि हमें बिल्कुल  
स्वस्थ शरीर नहीं मिलता तो हमें स्वस्थ मन तो मिल ही सकता



३६ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राक्षस है

तो निम्न उद्देश्य को सामने रगकर यह ऐसा कर रहा है उर्ध्व को यह लाक्षण कर रहा है। राक्षस ही ये यलमान मांसार्थ उगना उपहास भी करने लगते हैं जो मस्त रहते हैं और भोजन की किमी प्रकार छानवीन उपरोक्त ढंग से नहीं करते। जो मनुष्य यह समझता है कि भूल लगने पर फलों को खाने में स्वास्थ्य को हानि पहुंचती है वह भोजन के उद्देश्य को नहीं समझता। भोजन करने का उद्देश्य शरीर को पुष्ट करना और जीवित रखना है, उसको निर्बल बनाना और नष्ट करना नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि उपरोक्त झूठे भ्रम में न मालूम कितने मनुष्य पड़े हुये हैं जो भोजन द्वारा स्वास्थ्य की वृद्धि करना चाहते हैं। इससे उनके शरीर को भारी हानि पहुंचती है। उनकी यह धारणा कितनी गलत है कि सारा शुद्ध और प्राकृतिक भोजन उनको जीवन न देकर मृत्यु की ओर ले जाता है। एक भोजन के विशेषज्ञ ने मुझसे एक बार कहा था कि रोटी खाने से मैं बीमार पड़ गया और मैंने देखा है कि इसी प्रकार रोटी खाने से और भी हजारों मनुष्य बीमार पड़ गये हैं। तुरंत यह कि उसने ज्यादा तादाद में रोटी भी नहीं खाई थी और उसकी रोटी मेवा भरकर मोटे आटे की पर ई में बनाई गई थी। अब तक जो पाप हमने किया है उसे झार हम धो डाले और ऐसे-ऐसे बाह्यगत विचारों को अपने मन में







नैतिकता और प्रशस्त शिष्टाचार पड़ता है। उनमें हो हमें वह ज्ञान मिलता है जिससे जीवन की कमजोरी हमें मालूम होती है और हमें जीवन की दरेक पहलू में व्यवस्था लाने का बल मिलता है और जीवन की सब बातें हमारी और उम्मी तरह गिंच आती है जैसे चुम्बक की और लोहे के टुकड़े गिंच जाते हैं।

शरीर को निरोग करने की अपेक्षा हमें उसमें बेपरवाह हो जाना अच्छा है। उसकी परेशानियों में अपने को परेशानी नहीं बग्नी चाहिये बल्कि शरीर पर अपना पूरा अधिकार कर लेना चाहिये। उसे न तो बुरा-भला कहना चाहिये और न उसमें किसी लम्पट कला का काम लेना चाहिये। उसे नैतिकता के ऊपर भी नहीं रखना चाहिये। उसे अपने अनुशासन में रखकर आनन्द का सीमित उपभोग करना चाहिये। उसकी तकलीफों में घबड़ाना नहीं चाहिये। डाक्टरों की दवा की अपेक्षा शरीर को अपने नैतिक बल और शुद्ध मन द्वारा स्वस्थ रखना कहीं अच्छा है क्योंकि इसमें हमको चिरकाल तक आध्यात्मिक बल और मानसिक शान्ति मिलती है।

## ५—निर्धनता

हर युग में पशुन में महान् पुरुषों ने अपने ऊँचे उद्वेगों की पूर्ति के लिये धन को विलासिता दे रखी थी। तो फिर निर्धनता ऐसी भयानक श्रावति क्यों मानी जाती है? क्या बात है कि निम्न निर्धनता को इन महान् पुरुषों ने एक बरदान के रूप में माना था उसे आजकल का मनुष्य समुदाय ईश्वरीय दंड और महामारी समझता है। इसका उत्तर विलकुल सरल है। महान् पुरुषों में निर्धनता मनुष्य की महानता समझी जाती थी और उसके कारण मनुष्य के चरित्र की सारी बुराइयाँ दूर हो जाती थी और वह नेक, सुन्दर और चरित्रवान समझा जाता था। लोग धन और पद से भी निर्धनता की अधिक इज्जत करते थे यहाँ तक कि चरित्रवान सन्यासियों को देखकर हजारों मनुष्य उनकी नकल करके उन्हीं का सा जीवन व्यतीत करते थे। आजकल तो सम्य शहरों में निर्धन को लोग कमीना, शपथखाने और शराब पीने वालों की तरह अत्यन्त घृणास्पद, गन्दा, सुख बेईमान और पापी समझते हैं। निर्धनता और पाप में से किसका दरजा ऊँचा है? सभी कहेंगे कि पाप निर्धनता से अधिक बुरा है। निर्धनता से पाप की भावना निकाल दीजिये तो उससे

एक भद्र जायगी। निर्धनता जो अभी तक एक बहुत बड़ी अपमान की चीज समझी जाती थी अब सुन्दर दिगलार्ड पढ़ने लगेगी और वह आपके लिये लाभदायक होगी। फनस्युमियम (Confucius) येनहुई (Yen hwee) नामक अपने निर्धन शिष्य को धनी शिष्यों में अधिक मानता था। उसे वह बहुत ही बड़ा चरित्रवान समझता था यद्यपि वह बहुत ही निर्धन था और चावल और पानी पर अपना गुजर एक छ्दोटी सी कुटी में करता था। वह अपना निर्धनता के बारे में चूँ तक नहीं करता था। इस निर्धनता से दूसरों का दिल दहल उठ सकता था किन्तु यह अपनी शान्ति को भग नहीं होने देता था। निर्धनता एक चरित्रवान पुरुष को निरुत्साहित नहीं कर सकती बल्कि उसे एक अच्छे पद पर बैठा सकती है। निर्धनता के ही कारण येनहुई के गुणों का अधिक प्रकाश हो रहा था। वह एक अप्रधान स्थान में पड़े हुये हीरे की तरह चमक रहा था।

समाज सुधारक प्रायः कहा करते हैं कि निर्धनता पाप की तनी है किन्तु वे ही सुधारक यह भी कहते हैं कि धन के कारण भी लोग दुराचारी होते हैं। कारण से कार्य होता है। अतएव यदि धन की प्रचुरता दुराचार का कारण होती और निर्धनता अपमान का कारण होती तो प्रत्येक धनी दुराचारी होता और प्रत्येक निर्धन को अपमान सहना पड़ता।

२ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

पापी तो हर हालत में पाप करता है चाहे वह धनी  
। निर्धन हो अथवा दोनों के बीच की श्रेणी का हो। उ  
कार धर्मात्मा भलाई ही करता है चाहे वह कैसी भी हैसि  
। क्यों न हो। जो पाप भीतर छिपा हुआ है वह अ  
। तुकूल परिस्थितियों को पाकर आपसे आप प्रगट होता है।  
। रिस्थितियाँ उसको पैदा नहीं कर सकती।

अपनी आर्थिक दशा से असंतुष्ट रहना एक बात है और  
। निर्धन होना दूसरी बात है। बहुतों की आय एक वर्ष में सैकड़ों  
। उण्ड की और बहुतों की हज़ारों पाउण्ड की होती है और  
। उनको काम भी कम करना पड़ता है तब भी वे अपने को  
। निर्धन ही समझते हैं। धन की यह हाविश उनके लिये  
। निर्धनता का कारण ही बनती है। वास्तव में उनकी परेशानी  
। न कारण निर्धनता नहीं है बल्कि अधिक धन संचय करने  
। न लोभ है। वे दुखी निर्धनता के कारण नहीं हैं बल्कि और  
। अधिक धन पैदा करने के लोभ के कारण दुखी हैं। निर्धनता  
। हुत करके मन में होती है, धन में नहीं। जब तक मनुष्य के  
। न में अधिक धन पैदा करने की लालसा बनी रहेगी तब तक  
। वह निर्धन ही रहेगा। इस अर्थ में वह निर्धन है क्योंकि लोभ  
। न की निर्धनता से होता है। एक कंजूस करोड़पती भले ही हो  
। केन्तु वह इस अवस्था में भी उसी प्रकार निर्धन ही रहता है

जिस प्रकार वह उम समय निर्धन था जब उसके पास एक पानी कीड़ी भी नहीं थी ।

न मालूम कितने लोग निर्धनता के साथ अपमान सहने हुये अपना जीवन व्यतीत करते हैं । उनको अपनी इस गिरी हुई अवस्था में ही सन्तोष रहता है । उनका इस प्रकार गन्दगी, अव्यवस्था और आलस्य के साथ रहना, मुझर का विलापी जीवन व्यतीत करना; गन्दे पायु-मडल में गाली थकना और न्दे-गन्दे चिन्तार मन में लाना मुझे बहुत खटकता है । यह तारी अथवा निर्धनता दूषित मन से पैदा हुई है और इस मस्या को हल करने का उपाय यही है कि हम बाहर देखने की रीति अपने भीतर देखें । यदि मनुष्य भीतर से स्वच्छ और चित हो जाय तो फिर वह बाहर गन्दे स्थान में नहीं रह सकता और न अपमान सह सकता है । अपने मन को ठीक करके तब मनुष्य अपने घर को भी ठीक कर सकता है । जब वह अपने पास के चारों ओर के वायु-मडल को ठीक कर लेता है तब तब लोग समझेंगे और वह भी समझेगा कि अब मैं ठीक रास्ते पर जा रहा हूँ । उसका बदला हुआ मन उसके बदले हुये जीवन में दिखलाई पड़ता है ।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो समझदार हैं और जिनका समाज में आदर है किन्तु तब भी वे अपने को निर्धन समझे हुये हैं ।

४४ मनुष्य ही मन, शरीर और कर्तव्यनिष्ठा का घर है

के निरपेक्ष होने इत्यादी ही पण्डित करने हैं। शरीर के सुन्दर, शक्ति-विशाल और गुणों से ही और किसी पण्डित की इच्छा नहीं है। उमर में जो शरीर का अंगान्तरिक शक्ति में सम्पन्न है और जो परमात्मता करने की इच्छा करते हैं उनसे शरीर निरपेक्ष शक्ति में शरीर गुणों और शारीरिक बल की इच्छा नहीं करते। शरीर उन्नति करके और शरीर करने का ही उद्देश्य प्राप्त करने शक्ति पूर्ण और ऊँचे जीवन की वे इच्छा करते हैं। वह उन्हें मिल सकता है।

कर्तव्यनिष्ठा

पूर कर सकता है।

वह शरीर सम्पन्न करके और शरीर को प्रभावशाली बनाने का शक्ति बनाकर अपने जीवन का पूर्ण सफल बना सकता है। कर्तव्यनिष्ठा पर यदि गहराई से विचार किया जाय तो मालूम किया जा सकता है कि उमर सम्बन्ध जीवन के सफल ऊँचे-ऊँचे गुणों से होता है। उससे शारीरिक बल मिलता है। बल परिरक्षित होता है, जीवन के प्रत्येक काम में ध्यान देने आदत पड़ती है, और हममें एकाग्रता, साहस, सच्चा हृदय और स्वावलम्बन की वृद्धि होती है। और कहीं तक का कर्तव्यनिष्ठा से हममें आत्म-त्याग की भावना भी बढ़ती है। तमाम वास्तविक सफलताओं की कुन्जी है। एक अत्यन्त सफल

मुष्य से किसी ने पूछा, “आपकी सफलता का क्या रहस्य है ?”  
 मने उत्तर दिया, “मैं प्रातःकाल ६ बजे उठ जाता हूँ और  
 ज़ोर भर अपने काम में लगा रहता हूँ, “उसी मनुष्य को  
 फलता और आदर मिलता है और वही मनुष्य अपने को  
 भावशाली भी बना सकता है जो पौर परिभ्रम के साथ अपना  
 काम करता है और दूसरों के काम में स्वयं में भी विघ्न नहीं  
 डालता ।

लोग जोर देकर कहते हैं कि जो अत्यन्त निर्धन है—जैसे  
 मेल और कारखाने के मजदूर—उनका किसी विशेष काम करने  
 का अवसर नहीं मिलता । यह बात गलत है । किसी विशेष  
 काम करने का उपयुक्त समय और सुअवसर सभी मनुष्य को  
 पहुँच में होता है । जिन निर्धन मनुष्यों का ऊपर उल्लेख किया  
 गया है । जो कहते मनुष्य हैं कि जहाँ वे हैं वही रहना चाहते हैं  
 उनको वही अपने कारखाने में हमेशा परिभ्रम में काम करना  
 चाहिये और अपने कुटुम्ब के साथ हमेशा प्रसन्नता के साथ  
 अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये किन्तु जो समझते हैं कि  
 हम अपने वर्तमान काम से ऊँचा काम कर सकते हैं उनको  
 चाहिये कि वे अपने सुहाएँ के समय में अपने को उँचे काम के  
 लिये योग्य बनावें । जो निर्धन मनुष्य परिभ्रमी होते हैं वे अपने  
 समय की वस्तु भी कर लेते हैं । जो नरयुवक अपनी नि



६ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का गुना है

बाहर निकलना चाहता है उसे शराब पीना, तम्बाकू पीना, मत्तभ्रम करना, रात में देर तक नान गाने और सोनार और लवों में घेड़ना जिनमें गद्द अभी तक फँगा हुआ है छुड़ देना चाहिये और साम्राज्य का समय उसे अपने को गिराने करने में बिनाना चाहिये जो उमरी उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस विधि को अपनाकर धनी और निर्धनी दोनों वर्गों के मनुष्यों ने अपनी महान उन्नति कर ली है। इतिहास इसका साक्ष्य है। हमें यह बात गिद्द होनी है, जैसा बार-बार दोहराया गया है, कि बचत के समय को आत्मोन्नति में लगाना चाहिये, उसे यों ही व्यर्थ न छोड़ देना चाहिये। जो अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट हैं और अपनी भविष्य की उन्नति करना चाहते हैं उनको समझ लेना चाहिये कि जितना ही अधिक वे निर्धन हों उतना ही अधिक परिश्रम और साहस के साथ वे अपनी उन्नति के लिये काम करें।

निर्धनता अभिशाप है या नहीं, यह बात मनुष्य के चरित्र और उसकी मानसिक दशा पर निर्भर है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि धन मनुष्य के लिये अभिशाप है अथवा नहीं। महात्मा गान्धियाय अत्यन्त धनी होते हुए भी कारण बताए रहे थे और उसके नीचे दबे जा रहे लिये धन अभिशाप था। वह निर्धन होने की

उसी प्रकार इच्छा करते थे जिस प्रकार धनी होने की इच्छा एक कजूर करता है । निर्धनता हमेशा दुखदाई होती है । वह निर्धन को अपमानित करती है और समाज पर भी अपना बुरा प्रभाव डालती है । तर्क दृष्टि से गहराई के साथ यदि हम निर्धनता का विश्लेषण करें तो हमें यही मालूम होता है कि उसकी जिम्मेदारी निर्धन मनुष्य के ही ऊपर है । जब हमारे समाज सुधारक निर्धनता की उगी प्रकार कितिली उड़ानें हैं जिस प्रकार धन की । जब वे मनुष्य के गन्दे रहन-सहन को समाप्त कर देने की उगी प्रकार दानवीर करते हैं जिस प्रकार वे कम वेतन का बन्द करना चाहते हैं तो हम आशा है कि वे लोग कर्मोनी निर्धनता को भी समाप्त कर देंगे जो हमारी सम्पत्ता का कोट्टा हो रहा है । हम प्रकार की निर्धनता के समाप्त होने के लिये यह जल्गी है कि मनुष्य का मन भी एकदम बदल जाय । जब मनुष्य के मन में लोभ और स्वार्थ निकल जायगा, जब शराब का पीना, भ्रष्टाचार, आलस्य और विलासिता समाप्त से हमेशा के लिये हट जायगी, तब निर्धन और धनी की गहरा मिट जायगी और मनुष्य अपने कर्तव्य का प्रसन्नता के साथ पूरी तरह से पालन करेंगे जिसको (थोड़े से चरित्रवान पुत्रों को छोड़कर) धनी वे नहीं कर रहे हैं । उस समय सभी लोग स्वाभिमान और शान्ति के साथ अपने परिश्रम के फल का उपभोग कर सकेंगे ।

## ६—मनुष्य का आध्यात्मिक अविज्ञान

जिस मनुष्य का हृदय काम के लिये विद्युत् से मनुष्य को उत्पन्न करता है वह है उसका मन और उसका संज्ञा। मनुष्य वह प्राणी, जेसा हम पहले बता चुके हैं, मान्य में प्रकृत नहीं है और न इतिहास में गीतना ही है। मनुष्य पशु-पक्षि मनुष्य मान्य में है, पशु-पक्षि में है, यह पशु-पक्षि में है किन्तु वह उद्वेग-भेदना है और वहाँ तक कहे उसका पशु-पक्षि मनुष्य मान्य में है। इतिहास में मनुष्य मनुष्य पर जिस काम कर लेता है वह जीवन पर भी जिस काम कर लेता है। हम जिस में वह विश्व के उच्च विचार पर नद उच्च है और तब हमें मान्य समाज मानने की बुद्धि भी मिल जाती है। यह भलाई, सुख और इन दोनों से भी परे की बात प्रकृत तरह समझ सकता है और जो काम वह करता है उन परिणाम को भी वह मली-भौति समझता है।

इस समय मनुष्य किसी न किसी तरह ऐसे-ऐसे विचार के अधीन पड़ा हुआ है जिन पर उसका कोई अधिकार न हो। जो उसे अपनी इच्छानुसार हथ-उधर घुमाने रहते हैं वह उन विचारों को अपने अधीन करले तो

अपने जीवन पर शासन करने लगे। मूर्ख लोग समझते हैं कि हम और सब लोगों को जीन सकते हैं केवल अपने को नहीं जीन सकते और इस प्रकार वे बाहरी परिस्थितियों को मुधार कर अपने लिये और दूसरों के लिये सुख प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। केवल बाहरी चीजों के बल पर और उनको बुद्धि घटा घटाकर मनुष्यों को चिरस्थायी सुख और विवेक नहीं मिल सकता। मलहम पट्टी लगाने और परिचर्या करने से एक रोग ग्रस्त शरीर तन्दुरुस्त और सुखी नहीं हो सकता। बुद्धिमानों को मालूम है कि जब तक मनुष्य अपने मन पर विजय नहीं प्राप्त कर लेता तब तक और किसी प्रकार की विजय कोई विजय नहीं होती। जब वह अपने मन को अपने अधीन कर लेता है तब बाहरी चीजें आपसे आप उसके अधीन हो जाती हैं और उसके भीतर से फिर आनन्द का सोना आपसे-आप बाहर निकलने लगता है क्योंकि उसको ईश्वर का बल मिलता है और उसके कारण उसके चरित्र में शान्ति आ जाती है। उसके पाप धो जाते हैं और काम, क्रोध आदि विकारों के दृष्ट जाने में उसका शरीर भी बलवान हो जाता है।

मनुष्य अपने मन पर शासन कर सकता है और अपने जीवन का स्वामी बन सकता है। जब तक वह अपने मन को अपने वश में नहीं करता तब तक उसका जीवन दुर्लभ है।

५० मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

अपूर्ण रहता है। जिन मानसिक शक्तियों से उग्रता स्वभाव बन गया है वे ही शक्तियाँ उग्रता आध्यात्मिक क्षेत्र होती हैं। शरीर स्वयं आध्यात्मिक क्षेत्र नहीं बना सकता। शरीर पर शासन करने वाली काम, क्रोध आदि को रोकने का मध्यस्थ मनुष्य के मन से है।

जो भीतरी विचार हमारी आध्यात्मिकता में बाधा डालते हैं उनको अपने वश में करना, उनको सुधारना, और उनको एकदम निमूल कर देने का एक बहुत ही महत्वपूर्ण काम होता है जिसे सब लोगों को आगे या पीछे अग्र्य करना ही पड़गा बहुत समय तक मनुष्य अपने को बाहरी चीजों का दास समझता है किन्तु एक दिन उसके जीवन में ऐसा आता है जब उसकी आध्यात्मिक आँखें खुलती हैं और तब वह सोचता है कि अब अभी तक अपने ही असंयमित और अपवित्र मन का दास रहा हूँ। उस दिन वह फिर उठ खड़ा होता है और कूदकर मन पर सवार हो जाता है और फिर वह अपनी वासनाओं का दास नहीं रह जाता। वह उन पर उसी प्रकार शासन करता है जिस प्रकार एक राजा अपनी प्रजा पर शासन करता है। बिना मन को अपने वश में किये अभी तक वह एक दीन भित्तारी और गुलाम की तरह दर-दर भटकता था किन्तु अब वह समय समाप्त होने लगा है इसलिये वह अपने मन को भीतरी

वागनाथों को मृतम करके उसको शान्ति के मार्ग की ओर ले जा रहा है ।

इस प्रकार मन को वश में करके और अपने जन्मजात आध्यात्मिक अधिकार को प्राप्त करके वह सब युगों के उन महात्माओं के बीच में प्रवेश करता है जिन्होंने अज्ञान और मानसिक अशान्ति को दूर करके और अपने शरीर को पूर्णरूपेण अपने वश में करके स्वर्ग की बादशाहत में प्रवेश किया है ।



५.० मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है अपूर्ण रहता है। जिन मानसिक शक्तियों से उसका स्वभाव बन गया है वे ही शक्तियाँ उसका आध्यात्मिक क्षेत्र होती हैं। शरीर स्वयं आध्यात्मिक क्षेत्र नहीं बना सकता। शरीर पर शासन करने वाली काम, क्रोध आदि को रोकने का सम्बन्ध मनुष्य के मन से है।

जो भीतरी विकार हमारी आध्यात्मिकता में बाधा डालते हैं उनका अपने वश में करना, उनको सुधारना, और उनको एकदम निर्मूल कर देने का एक बहुत ही महत्वपूर्ण काम होता है जिसे सब लोगों को आगे या पीछे अवश्य करना ही पड़ेगा। बहुत समय तक मनुष्य अपने को बाहरी चीजों का दास समझता है किन्तु एक दिन उसके जीवन में ऐसा आता है जब उसकी आध्यात्मिक आँखें खुलती हैं और तब वह सोचता है कि मैं अभी तक अपने ही अव्यमित और अपवित्र मन का दास रहा हूँ। उस दिन वह फिर उठ खड़ा होता है और क्रूर मन पर सवार हो जाता है और फिर वह अपनी वासनाओं का दास नहीं रह जाता। वह उन पर उसी प्रकार शासन करता जिस प्रकार एक राजा अपनी प्रजा पर शासन करता है। वह मन को अपने वश में किये अभी तक वह एक दीन मिला और गुलाम की तरह दर-दर समाप्त होने लगा है।

बुराईयों पर विजय करना उनके सामने सिर नहीं मुकाना ५३

के लिये पैदा किया गया है। संसार के जिनने आध्यात्मिक नियम हैं वे सब नेक मनुष्यों के लिये बनाये गये हैं जो उनकी रक्षा करते हैं और उन्हीं के इन पर जीवित रहने हैं। बुरे लोगों के लिये कोई आध्यात्मिक नियम नहीं होते। उनका स्वभाव अपने को दुखी करना और अपना विनाश करना ही होता है।

आजकल की शिक्षा में ऐसा कोई साधन नहीं है जिसके द्वारा प्रत्यक्ष में मनुष्य अपने चरित्र को सुधार सके और अपनी बुराईयों को हटा सके। हमारे धार्मिक गुरुओं को भी न तो इस बात की योग्यता है और न उनमें रुचि है कि वे लोगों के चरित्र को सुधार सके अथवा उनकी बुराईयों को दूर कर सकें। मनुष्य जब संसार के टोकर खाता है तब बिना किसी की मदद के अप्रत्यक्ष रूप में उसमें नैतिकता की वृद्धि होती है। वह समय आयेगा जब शिक्षा में नवयुवकों के चरित्र सुधार में विशेष जोर दिया जायगा और कोई ऐसा मनुष्य हमारा धर्म गुरु न हो सकेगा जिसमें आत्मनयम न हो, जो ईमानदार न हो और जिसका आचरण शुद्ध न हो। सर्वगुण सम्पन्न और ऊँचे चरित्र का गुरु ही हमारे चरित्र को सुधार सकेगा और धर्म का स्तम्भ बन सकेगा।

मेरा अपना मत यही है कि मनुष्य अपनी बुराईयों पर प्राप्त करे, पापों को नष्ट करे और सन्मार्ग पर चलकर



## ७—अपनी बुराइयों पर विजय प्राप्त करना, उनके सामने सिर नहीं झुकाना

जिसने अपने मन को अपने वश में कर लेने का बीड़ा उठाया है वह अपनी बुराइयों के सामने सिर नहीं झुकाता, उनको अपने वश में करता है। यदि वह किसी के सामने सिर झुकाता है तो सत् गुणों के सामने। बुराई के सामने सिर झुकाना मनुष्य की सबसे निकृष्ट कमजोरी है और सत् गुणों के सामने सिर झुकाना सबसे बड़ी शक्ति है। पाप, दुःख, अज्ञान, और कष्ट के सामने सिर झुकाने का यह अर्थ हुआ कि मैं हाथ पैर ढीले कर रहा हूँ, मैं हार गया हूँ, जीवन एक कुकर्म है और उसकी गुलामी मैं स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार बुराई के सामने सिर झुकाना धर्म के विरुद्ध है। इस प्रकार बुराई के सामने सिर झुकाने से मनुष्य का जीवन कष्टमय होता है, उसमें प्रलोभनों को रोकने की शक्ति नहीं रह जाती, और उसमें वह आनन्द देखने को नहीं मिलता जो सुकर्मों द्वारा वश में किये हुये मन से मनुष्य को मिलता है।

बुराइयों से हार कर दुखी रहने के लिये नहीं पैदा  
। यह उन पर विजय प्राप्त करने और सुखी रहने

सुराह्यो पर विजय करना उनके सामने मिर नहीं झुकाना ५३

लिये पैदा किया गया है। मगार के जितने आध्यात्मिक नियम  
ये सब नेक मनुष्यों के लिये बनाये गये हैं जो उनकी रक्षा  
रखने हैं और उन्हीं के चल पर जीवित रहने हैं। बुरे लोगों के  
लिये कोई आध्यात्मिक नियम नहीं होने। उनका स्वभाव अपने  
को दुष्पी करना और अपना विनाश करना ही होता है।

आजकल की शिक्षा में ऐसा कोई साधन नहीं है जिसके  
द्वारा प्रत्यक्ष में मनुष्य अपने चरित्र को सुधार सके और अपनी  
सुराह्यो को हटा सके। हमारे धार्मिक गुरुओं को भी न तो हम  
बात की योग्यता है और न उनमें यत्नि है कि वे लोगों के  
चरित्र को सुधार सकें अथवा उनकी सुराह्यो को दूर कर सकें।  
मनुष्य जब मगार के टोकर ध्याता है तब बिना किसी की मदद  
के अप्रत्यक्ष रूप में उसमें नैतिकता की वृद्धि होती है। यह समय  
आयेगा जब शिक्षा में नवयुवकों के चरित्र सुधार में विशेष जोर  
दिना जायगा और कोई ऐसा मनुष्य हमारा धर्म गुरु न हो  
सकेगा जिसमें आत्मसमय न हो, जो ईमानदार न हो और  
जिसका आचरण शुद्ध न हो। सर्वगुण सम्पन्न और उंचे चरित्र  
का गुरु ही हमारे चरित्र को सुधार सकेगा और धर्म का  
रक्षक सकेगा।

ऐसा अपना मत धरी है कि मनुष्य अपनी सुराह्यो पर  
ध्यान करे, पापों को नष्ट करे और सन्मार्ग पर चलकर।

५४ मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

स्थायी शान्ति प्राप्त करे। सब युगों के धर्माचार्यों का भी यही मन रहा है। मूखों ने अपनी अज्ञानता के कारण इन धर्माचार्यों के मतों का छिपा रक्खा या और उनका अर्थ मनमानी करते रहे हैं। किन्तु याद रखिये कि जो मैं कहता हूँ वही उनका मत रहा है और भविष्य में जो धर्माचार्य उत्पन्न होंगे उनके भी यही मत रहेंगे। इमे ईश्वर का ही उपदेश समझना चाहिये।

हमें अपनी बाहरी बुराइयों और संसार के कुकर्मियों को शुद्ध नहीं करना है बल्कि हमें अपने भीतरी बुरे विचारों, बुरी वासनाओं और बुरे कर्मों को शुद्ध करना है। जब सब मनुष्यों के हृदय शुद्ध हो जायेंगे तब संसार के लोग पुकार-पुकार कर कहने लगेंगे कि संसार से अब बुराई बिल्कुल उठ गई है। जब सब मनुष्य नेक बन जायेंगे, जब पृथ्वी से बुराई बिल्कुल उठ जायगी, जब पाप और दुःख कहीं दूँडे पर भी नहीं मिलेंगे तब संसार के सारे लोग वास्तव में सुखी हो सकेंगे।

# एलेन सीरीज की कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें

१. विचारों का प्रभाव—यह पुस्तक जेम्स एलेन लिग्विन As You Thinketh का अनुवाद है। उसमें बताया गया है कि मनुष्य के विचारों में कितनी महान् शक्ति है; उसका कितना प्रभाव हमारे कार्यों पर पड़ता है, एवं उसमें कितना चमत्कार है। मूल्य ॥१॥

२. मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है—यह पुस्तक जेम्स एलेन के Man is the Master of His Mind, Body and Circumstances का अनुवाद है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार हम अपने विचारों और अप्रवृत्तियों में अपने भाग्य का बना सकते हैं। मूल्य ॥२॥

३. गौरवशाली जीवन—यह जेम्स एलेन लिग्विन Late Triumphant का अनुवाद है। इसमें बताया गया है कि मनुष्य के विचारों में कितनी महान् शक्ति है, उसका कितना प्रभाव हमारे कार्यों पर पड़ता है, एवं उसमें कितना चमत्कार है। मूल्य ॥३॥

४. नर से नारायण—यदि हम समाज में प्रेम करें, हमेशा सच्चाई के मार्ग पर चलें और मन तथा हृदय का अपने पक्ष में रखें तो यह मानवी दुःख दूर किया जा सकता है। यह पुस्तक जेम्स एलेन लिग्विन From Poverty to Power का अनुवाद है। मूल्य १॥ मास।

५. मन की अपार शक्ति—यह पुस्तक भीमता लिली एलेन लिग्विन Might of the mind का अनुवाद है। एक सुन्दर पुस्तक में बताया गया है कि मनुष्य के भी बड़ अपार शक्ति है जिसको ज्ञान लेने पर वह जैसा देता बन सकता है। मू० ॥२॥

६. भाग्य पर विजय—इस पुस्तक में पुद्गलार्थ का महत्व दिखलाया गया है। पुद्गलार्थी पुद्गल चाहे तो भाग्य को भी बदल सकता है। मूल्य लेखक जेम्स एलेन। मूल्य ॥१॥

७. हमारे मानसिक शिशु—इस पुस्तक में भय, श्रद्धा, काम, क्रोध आदि विकारों से छूटने के सुलभ मार्ग बताये गये हैं जिनके अनुसार चल कर मनुष्य अपने जीवन को सुखी बना सकते हैं। यह पुस्तक लिली एलेन लिखित Child of the mind का अनुवाद है। मूल्य ॥२॥

८. जेम्स एलेन की डायरी अथवा दैनिक ध्यान—इस पुस्तक में जेम्स एलेन ने साल भर के प्रत्येक दिन के अपने विचित्र विचारों को लिपिबद्ध किया है, जिनको पढ़कर पागलपन की स्वर्गीय भावनाओं से भर सकता है। इसके एक-एक शब्द चमत्कार एव बल भरा है जो हृदय पर अद्भुत प्रभाव डालता है। इस पुस्तक को मँगाकर नित्य पाठ करें। मूल्य २)

९. मौन की वाटिका में—श्रीमती लिली एलेन की खूबी हुई "The Garden of Silence" "मौन की वाटिका में" अपने दग की एक ही पुस्तक है। इस छोटी पुस्तक में सरल शब्दों में बतायी हुई बातें हमारे जीवन-पथ में प्रकाश-स्तम्भ के समान हैं। ये प्रकाश-स्तम्भ केवल उस परमात्मा तक पहुँचने का ही मार्ग नहीं बरन् उस परमात्मा की सन्तानों से हम विनम्र व्यवहार करें, इसका भी ज्ञान कराते हैं। इस पुस्तक को मँगाने वाला कभी किसी मानसिक दुःख से निरत नहीं रहेगा। मूल्य सिर्फ ॥१॥

